मानव के नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान में बौद्ध धर्म का योगदान

डॉ० देवेन्द्र कुमार*

बौद्ध धर्म भारत में उत्पन्न हुए नवीन धर्मो में सबसे अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ। बुद्ध के सभी उपदेश बड़े व्यावहारिक और विवेकपूर्ण थे जिन्होंने भारतीय ही नहीं, विश्व के जनमानस को अत्यधिक प्रभावित किया। कुछ विद्वानों का कहना है कि "बुद्ध नवीन धर्म के संस्थापक न थे अपितु धर्म के सुधारक थे। वे एक पैगम्बर न थे अपितु एक महान संत थे जिन्होंने नैतिकता और सत्कर्म पर बल दिया। उनके नैतिक नियम जनसाधारण के लिए भी अनुकरणीय थे।

बौद्ध धर्म ने सदाचार, लोक सेवा और उच्च आर्दशों पर बल देते हुए पहली बार भारत में मानव के परस्पर समान संबंधों पर बल दिया है। दान, शुद्धता, आत्म बलिदान, सत्य आत्म–नियंत्रण, दया, समानता, अहिंसा, मन–वचन और कर्म की पवित्रता आदि नैतिक गुणों का भारतीय समाज में समुचित ढंग से समावेश करने एवं उनकी आध्यमिकता के स्तर को परिमार्जित करने का श्रेय बौद्ध धर्म को है।

बौद्ध धर्म में बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का निचोड़ चतुष्टय–आर्यसत्य है। बुद्ध ने इन चार–सत्यों (चत्वारि आर्य–सत्यानि) का रहस्योद्घाटन किया।[1] 1. दुःखम् (संसार में जीवन दुःखमय है।) 2. दुःख समुदय (इन दुःखों के कारण विद्यमान है।) 3. दुःख निरोध (दुःख से मुक्ति संभव है) तथा 4. दुःख–निरोधगामिनी प्रतिपदा (दुःखों से निरोध के लिए उचित उपाय अथवा मार्ग है।) सत्यों की संख्या अनंत है, पर अत्यंत महत्वपूर्ण होने के कारण ये ही सत– चतुष्टय सर्वश्रेष्ठ हैं। इन सत्यों की तह तक आर्य अर्थात् विद्वज्जन ही पहुँच सकते हैं, अतः इसको आर्य कहा गया।

प्रथम आर्य–सत्य है दुःखम्। इस संसार में दुःख की सत्ता इतनी ठोस और स्थूल है कि उसका अपलाप नहीं किया जा सकता है, किन्तु लौकिक दृष्टि से दुःख भी जीवन के अनेक तत्वों में एक है प्राणिमात्र किसी न किसी कष्ट से पीड़ित है। द्वितीय आर्य सत्य है – दुःख–समुदय, अर्थात दुःखों के कारण विद्यमान हैं।

***(नेट) वरिष्ठ शोध–छात्र राजीव गाँधी नेशनल रिसर्च फेलोशिप प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।**

बौद्धधर्म के प्राचीनतम् निर्देशों में दुःख समुदय है –तृष्णा कर्म, अहंकार, दृष्टि अथवा उपादान। दुःख की उत्पति के यथाभूत ज्ञान के बिना दुःख निरोध संभव नहीं। दुःख की उत्पति का एक कारण नहीं है परन्तु कारणों की एक लंबी श्रृंखला है। इस कारण परंपरा की संज्ञा है द्वादश–निदान। द्वादश–निदान का दूसरा नाम प्रतीत्य–समुत्पाद (हेतु परंपरा) है। यह बौद्ध धर्म का मूल–सिद्धान्त माना जाता है। इसका अर्थ है –किसी वस्तु की प्राप्ति होने पर अन्य वस्तु की उत्पति, अर्थात् सापेक्ष कारणवाद। ये द्वादश निदान हैं।[2] 1. जरामरण, 2. जाति, 3. भव, 4. उपादान, 5. तृष्णा, 6. वेदना 7. स्पर्श, 8. षडायतन, 9. नामरूप, 10. विज्ञान, 11. संस्कार, 12. अविद्या। इनमें प्रत्येक पूर्व निदान का कारण पर–निदान है। जरामरण का कारण है जाति, जन्म लेना। जाति का कारण है, भव, अर्थात् प्राणिमात्र के पुनर्भव या पुनर्जनम उत्पन्न करने वाले कर्म। भव की उत्पति होती है, उपादान, आसक्ति से। उपादान भी अनेक हैं, जैसे– कामोपादान (स्त्री में आसक्ति) शीलापोदान, (व्रतों में आसक्ति), आत्मोपादान और उससे बढ़कर है आत्मोपादान। आसक्ति का कारण है तृष्णा (इच्छा)। तृष्णा उत्पन्न होती है इन्द्रियों द्वारा ब्राह्यर्थानीव से, अतः वेदना (इन्द्रिय–जन्य अनुभूति) ही तृष्णा की जननी है। वेदना का स्त्रोत है, स्पर्श, अर्थात् विषयेन्द्रिय संपर्क और स्पर्श की उत्पति होती है, षडायतन (मन सहित ज्ञानेन्द्रिय पंचक से षड़ायतन नामरूप दृश्यमान शरीर तथा मन से संवलित स्थान विशेष का कार्य है। नामरूप की सत्ता विज्ञान (चैतन्य) पर प्रतिष्ठित है। यह चित्तधार या चैतन्य मातृरूप से भ्रूण के नाम–रूप का साधक है। विज्ञान उत्पन्न होता है। संस्कार (पूर्वजन्म के कर्म और अनुभव से उत्पन्न संस्कार) से जो स्वंय अविद्या (अज्ञान) का कार्य है। इस प्रकार समस्त दुःखों का मूल कारण है – अविद्या। द्वादश निदानों के इस चक्र की संज्ञा भवचक्र है।[3]

तृतीय आर्य–सत्य है दुःख –निरोध, अर्थात् निर्वाण। कारण की सत्ता पर ही कार्य की सत्ता अवलंबित रहती है। अतः यदि कारण–परंपरा का निरोध कर दिया जाये, तो कार्य का निरोध स्वतः संपन्न हो जायेगा। दुःखों का आद्य कारण अवद्यिा है, जिसका विद्या द्वारा निरोध कर देने पर दुःख निरोध हो जाता है।

चतुर्थ आर्य–सत्य है दुःख–निरोध, अर्थात् निर्वाण–मार्ग। भगवान बुद्ध ने न तो सांसरिक सुखोपभोग में जीवन–व्यतीत करने वाले सुखमार्गियों के मार्ग को और न कठोर व्रताचरण से शरीर सुखाने वाले तापसों के मार्ग को निर्वाण के लिए सहायक माना। उन्होंने सुख–दुख के उभय छोरों को त्यागकर मध्यम प्रतिपदा का प्रतिपादन किया। इस प्रतिप्रदा को आर्य–अष्टांगिक मार्ग कहते हैं।[4] ये अष्टांग है–

1 सम्यक दृष्टि (आर्य सत्यों का ज्ञान/सत्य दृष्टिकोण),

2. सम्यक संकल्प (सत्य विचार),

3. सम्यक वचन (सत्य वचन),

4. सम्यक कर्म (सत्य कर्म),

5. सम्यक आजीविका (सत्य जीविका),

6. सम्यक व्यायाम (सत्य और ज्ञानयुक्त प्रयन्त),

7. सत्यक स्मृति (चित्त शरीर, वेदन आदि के अशुचि अनित्य रूप की उपलब्धि तथा लोभादि चित्त–संताप से दूर होना), और

8. सम्यक समाधि (चित्त की एकाग्रता)। इस अष्टांगिक मार्ग को अपनाने से मानव का जीवन पवित्र हो सकता है जिससे अन्तः शुद्धि के साथ–साथ ज्ञान की भी प्राप्ति होती है और निर्वाण की सधः प्राप्ति हो जाती है।

ज्ञानोपत्पति के लिए शरीर–शुद्धि नितांत आवश्यक है। अतः बुद्ध ने शील के आचरण द्वारा शरीर पर बल दिया। शील का तात्पर्य समग्र सात्विक कर्मो से है और बौद्ध धर्म में गृहस्थ तथा भिक्षु दोनों के लिए शीलों का पालन करना कर्तव्य माना गया है। बुद्ध का विचार था कि अष्टांगिक मार्ग का पालन करना तभी संभव है जब मनुष्य सदाचार और नैतिक मूल्यों का पालन करे। उन्होंने सदाचार अर्थात नैतिकता के दस नियम (शील) बताये। ये इस प्रकार है 1. अहिंसा, 2. सत्य, 3. अस्तेय, (चोरी न करना), 4. अपरिग्रह (संपति का त्याग), 5. ब्रह्मचर्य, 6. नृत्य, गान व मादक वस्तुओं का त्याग 7. सुगंधित वस्तुओं का त्याग 8. असमय भोजन न करना, 9. कोमल बिस्तर का त्याग, और 10. धन का त्याग। गृहस्थ के लिए पंचशील का विधान है। (प्राणति पात विरति, अदत्तादान–विरति, काम–मिथ्याचार विंरति, मृषावाद–विरति तथा सुरा–मैरेय प्रमाद–स्थान विरति),[6] पर भिक्षु के लिए दस शील का।

शीलों के साथ समाधि और प्रज्ञा के सेवन पर भी बौद्ध धर्म में बल दिया गया है। साम´्´फलसुत्त में चार प्रकार की समाधि का दृष्टांत सहित वर्णन उपलब्ध है। प्रज्ञा तीन प्रकार की बतलाई गई है–श्रुतमयी,चिन्तामयी, तथा भावनामयी। भगवान बुद्ध ने कहा कि प्रज्ञा के अनुष्ठान से ज्ञान–दर्शन, मनोमय शरीर का निर्माण ऋद्धियाँ, दिव्याश्रोत परचित ज्ञान, पूर्वजन्म स्मरण और दिव्यचक्षु की उपलब्धि होने के अनन्तर दुःखक्षय का ज्ञान हो जाता है। जब चित्तकामाश्रय (भोगने की इच्छा), भवाश्रय, (जन्म लेने की ईच्छा) तथा अविद्याश्रय अज्ञान मल से सदा के लिए मुक्त

हो जाता है, तब साधक निर्वाण प्राप्त कर लेता है। शील, समाधि ओर प्रज्ञा[7] को बौद्ध दर्शन में त्रिरत्न की संज्ञा दी गई है। बुद्ध के उपदेशों का सारांश भी यही है।

उपर्युक्त विवेचनाओं से स्पष्ट है कि महात्मा बुद्ध ने नैतिक मूल्यों पर अधिक बल दिया। अष्टांगिक मार्ग व दस शील के नियम (Ten code of conduct) वस्तुतः मनुष्य के नैतिक एवं आध्याात्मिक उत्थान के लिए प्रतिपादित किये गये। बौद्ध धर्म की शिक्षाओं का सार ही है–मनुष्य का नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान जिससे कि निर्वाण की प्राप्ति हो सके। बनर्जी महोदय का यह कथन सही है कि "In short, he (Buddha) was a great reformer whose system brought ethical principles to the forefront emphasising the value of morality concentration and wisdom.

संदर्भ सूची :–

1. दीघ निकाय, 1, पृ० 83–84, 2, पृ० 304
2. दीघ निकाय– महानिदान्त सुत्त, मज्झिम–निकाय सुत्त महातमहासंख्य–सुत्त
3. उपाध्याय, बलदेव –भारतीय दर्शन, पृ० 180
4. दीघ निकाय– महासतिवट्ठान सुत्तः, संयुत्त निकाय, 5 पृ० 8–10
5. दीघ निकाय : साम´्´फलसुत्त
6. आचार्य नरेन्द्र देव–बौद्ध धर्मदर्शन, पृ० 24
7. दीघ निकाय : साम´्´फलसुत्त
8. बनर्जी, पी० अर्ली इंडियन रिलीजंस, पृ० 187